11. पुरस्कार

• जयशंकर 'प्रसाद'

लेखक–परिचय

जयशंकर 'प्रसाद' (1890–1937) का जन्म काशी में हुआ था। ये 'सुंघनी साहू' के नाम से प्रसिद्ध थे। 1909 ई० में 'इन्दु' के सम्पादन से इनकी साहित्य यात्रा आरंभ हुई जो कामायनी तक अनवरत चलती रही। इन्होंने नाटक, निबंध, कहानियाँ, उपन्यास, काव्य, गद्य काव्य और चंपू आदि तत्कालीन सभी विधाओं में सिद्ध हस्त से लिखा है। वे भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्वों के व्याख्याता, मानव चरित्र के विविध गुप्त एवं जटिल पक्षों के उद्घाटक थे। आधुनिक भारतीय समाज के खोखलेपन का निदर्शन, इतिहास के अवशेषों में से मार्मिक एवं प्रेरक प्रसंगों का चयन, राष्ट्रीय गौरव की प्रतिष्ठा, नारी के व्यक्तित्व में ममता, श्रद्धा, त्याग, शक्ति और शौर्य का अवतरण, प्रकृति और मानव के संघर्ष एवं सहयोग का धूप–छाँही अंकन, नियति के विधान और मानवीय प्रयत्नों दोनों के सहयोग से मानव के उत्थान–पतन का चित्रण इनकी रचनाओं में दिखाई देता है। प्रसिद्ध रचनाएँ – चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु, आदि (नाटक), तितली, कंकाल और इरावती (अपूर्ण) (उपन्यास), कामायनी (महाकाव्य), देवरथ (कहानी संग्रह) आदि प्रसिद्ध हैं।

पाठ–परिचय

'पुरस्कार' कहानी इनके पाँचवें कथा संग्रह जिसका प्रकाशन 1936 ई० में हुआ से ली गई है। इस कहानी के चरित्रों में भाव सौंदर्य, अंतर्द्वंद्व तथा मनोवैज्ञानिक चढ़ाव–उतार दर्शनीय है। कोसल की राज्य परंपरा के निमित्त अपना खेत देकर भी प्रतिदान स्वीकार न करने वाली 'मधूलिका' मगध के राजकुमार अरुण के सपनों में खोकर कोसल के दुर्ग पर आक्रमण में सहयोगिनी बनती है। लेखक ने उसके हृदय में राष्ट्रप्रेम और स्वप्रेम के संघर्ष की कहानी को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

•••

मूल पाठ

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले–काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव–दुंदुभि का गंभीर घोष। प्राचीन के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा था– देखने लगा, महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर–तोरण से जय–घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुंड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम किरणों से अनुरंजित नन्हीं–नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल–सूचना से जनता ने हर्ष ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गईं। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्र–पल्लवों से सुशोभित मंगल–कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित–वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुये सुंदर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोसल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ा – उस दिन इन्द्र–पूजन की धूम–धाम होती; गोठ होती। नगर–निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनंद मनाते। प्रति वर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से संपन्न होता, दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठ कर बड़े कुतूहल से वह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिए कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिये चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुंदरी थी। कौशेय–वसन उसके शरीर पर इधर–उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे, सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किंतु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे–विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक–कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौंदर्य! कितनी सरल चितवन।

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किंतु साथ ही उसमें की स्वर्ण मुद्राओं को महाराज पर न्यौछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्त्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी जरा चढ़ी ही थी। मधूलिका ने सविनय कहा –

''देव! यह मेरे पितृ–पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।'' महाराज के बोलने के पहले वृद्ध मंत्री ने तीखे स्वर से कहा – ''अबोध! क्या कह रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है, फिर कोसल का यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना। ''राजकीय–रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मंत्रिवर!

महाराज को भूमि–समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।''–मधूलिका उत्तेजित हो उठी।

महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा – ''देव! वाराणसी युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।'' महाराज चौंक उठे–''सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोसल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?''

''हाँ देव!'' सविनय मंत्री ने कहा।

''इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मंत्रिवर ?'' महाराज ने पूछा।

''देव–नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिये चुन कर नियमानुसार पुरस्कार स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यंत अनुग्रह पूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।''

महाराज को विचार–संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जय घोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने–अपने शिविरों में चले गये किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक–वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

\+ \+ \+ \+

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ – वह विश्राम–भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसे गुलाबी खिल रही थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुँडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते–देखते नगर–तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे; अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर–सा निकल गया। सिंधु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता हुआ अरुण उसी मधूक–वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न–मुद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी–लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पंद। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठी–उसने अरुण से प्रश्न किया –छिः कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात् करने वाले धृष्ट, तुम कौन ?'' मधूलिका की आँख खुल पड़ी। उसने देखा एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। ''भद्रे! तुम्हीं न कल उत्सव की संचालिका रही हो?''

''उत्सव! हाँ, उत्सव ही तो था।''

''कल उस सम्मान.....''

''क्या आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे ?''

''मेरा हृदय उस छवि का भक्त बन गया है देवि!''

''मेरे इस अभिनय का–मेरी विडंबना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।''

''सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ–मेरे हृदय की भावना अवगुंठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी.....''

''राजकुमार मैं कृषक बालिका हूँ! आप नंदन–बिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है–मैं दुःख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करो।''

''मैं कोसल नरेश से तुम्हारी भूमि दिलवा दूँगा।''

''नहीं वह कोसल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती–चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।''

''तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?''

''यह रहस्य मानव–हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार नियमों से यदि मानव–हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक–बालिका का अपमान करने न आता।'' मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई। उसके हृदय में टीस–सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

\+ \+ \+ \+

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह–दूसरे खेतों में काम करती थी और चौथे पहर रूखी–सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक–वृक्ष के नीचे छोटी–सी पर्ण–कुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वह आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही उसकी साँसों को बिताने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कांति थी। आस–पास के कृषक उसका आदर करते थे। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

\+ \+ \+ \+

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश जिसमें बिजली की दौड़ धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी। यह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन के सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परंतु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती–बढ़ती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती बात स्मरण हुई –''दो, नहीं तीन वर्ष हुए होंगे इसी मधूक के नीचे, प्रभात में–तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?''

वह अपने हृदय से पूछने लगी–उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुक–सी वह पूछने लगी–''क्या कहा था ?'' दुख–दग्ध हृदय उन स्वप्न–सी बातों का स्मरण रख सकता

और स्मरण ही होता तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री, विडंबना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दरिद्रता की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद–माला के वैभव का काल्पनिक चित्र–उन सूखे डंठलों की रंध्रों से, नभ में–बिजली के आलोक में नाचता–हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की संध्या में जुगुनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका अभी वह निकल गया, मन ही मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की संभावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर शब्द हुआ –

''कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।''

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है और सहसा वह चिल्ला उठी–''राजकुमार!''

''मधूलिका!'' आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई, ''इतने दिनों के बाद आज फिर।''

अरुण ने कहा–''कितना समझाया मैंने, परंतु.....''

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा –''और आज आपकी यह क्या दशा है ?''

सिर झुका कर अरुण ने कहा –''मगध का विद्रोही निर्वासित कोसल में जीविका खोजने आया हूँ।''

मधूलिका उस अंधकार में हँस पड़ी–''मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक–बालिका, यह भी एक विडंबना है तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।''

\+ + + +

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा–''जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है ?''

''मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन–मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता ? और करता भी क्या ?''

''क्यों ? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम.....।''

''भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ, निराश क्यों हो जाऊँ ?'' अरुण के शब्दों कम्पन्न था, वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।

''नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे ? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनंद ले लूँ।''

''कल्पना का आनंद नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के संमान में सिंहासन पर बिठाऊँगा। तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।''

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अंधड़ बहने लगा–द्वंद्व मच गया। उसने सहसा कहा–''आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार!''

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला–''तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो ?''

युवती का वक्षस्थल फूल उठा। वह हाँ भी नहीं कह सकी, न भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के सामने उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरंत बोल उठा–''तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से प्रण लगाकर मैं तुम्हें इस कोसल के सिंहासन पर बिठा दूँ मधूलिका। अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी ?'' मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी, नहीं–किन्तु उसके मुँह से निकला, ''क्या?''

''सत्य मधूलिका, कोसल–नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिंतित हैं यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण–सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोसल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गए हैं।''

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगी। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा–''तुम बोलती नहीं हो ?''

''जो कहोगे वही करूँगी'' मंत्रमुग्ध–सी मधूलिका ने कहा।

\+ \+ \+ \+

स्वर्णमंच पर कोसल–नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किए हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आंदोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे–धीरे संचालित हो रहे हैं। तांबूल–वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा–''जय हो देव! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।''

आँखे खोलते हुए महाराज ने कहा –''स्त्री! प्रार्थना करने आई है ?आने दो।''

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आयी। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा–''तुम्हें कहीं देखा है!''

''तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।''

''ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताए, आज उसका मूल्य माँगने आई हो क्यों ? अच्छा–अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी!''

''नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।''

''मूर्ख! फिर क्या चाहिए ?''

''उतनी ही भूमि। दुर्ग के दक्षिण नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा; भूमि को समतल भी बनाना होगा।''

महाराज ने कहा–''कृषक बालिके! वह बड़ी उबड़–खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।''

''तो फिर निराश लौट जाऊँ।''

''सिंहमित्र की कन्या! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना.....।''

''देव! जैसी आज्ञा हो।''

''जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञा–पत्र देने का आदेश करता हूँ।''

''जय हो देव!'' कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आई।

\+ + + +

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है। आज वहाँ मनुष्यों का पद–संचार से जंगल की शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर–उधर घूमते थे। झाड़ियों को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। किसी को इसकी चिंता न थी।

एक घने कुंज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अंतिम किरणें झुरमुट से घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा–''चार पहर और विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण कलेवर कोसल–राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिका!''

''भयानक! अरुण तुम्हारा साहस देख कर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम.....''

''रात के तीसरे पहर मेरी विजय–यात्रा होगी मधूलिके!''

''तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?''

''अवश्य! तुम अपनी झोपड़ी में यह रात बिताओ, प्रभात से तो राजमंदिर ही तुम्हारा लीला–निकेतन बनेगा।''

मधूलिका प्रसन्न थी, किंतु अरुण के लिए उसकी कल्याण कामना सशंक थी। वह कभी–कभी उद्विग्न–सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता।

सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा–''अच्छा, अंधकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राणपन से इस अभियान के प्रारंभिक कार्यों को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए रात्रि भर के लिए विदा।''

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़ने वाले अंधकार में, वह अपनी झोपड़ी की ओर चली।

\+ + + +

पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गयी। जितनी सुख–कल्पना थी, वह जैसे अंधकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ; यदि वह सफल न हुआ तो! फिर सहसा सोचने लगी, वह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय ? मगध कौसल का चिर शत्रु! ओह; उसकी विजय! कौसल–नरेश ने क्या कहा था–'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र कोसल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं। मधूलिका! ''मधूलिका!'' जैसे उसके पिता उस अंधकार में पुकार रहे थे, वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गयी।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़–बुन में विक्षिप्त–सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती है। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे–आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसक बाएँ हाथ में अश्व की वल्गा थी और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यंत धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परंतु मधूलिका बीच से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा –''कौन ?'' कोई उत्तर न मिला। तब दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा–तू कौन है स्त्री ? कोसल के सेनापति को शीघ्र उत्तर दे।''

रमणी जैसे विकारग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी–''बाँध लो मुझे, बाँध लो! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।''

सेनापति हँस पड़े और बोले–''पगली है।''

''पगली! नहीं यदि वही होता तो इतनी विचार–वेदना क्यों होती सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।''

''क्या है! स्पष्ट कह।''

''श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिण नाले के पार से उनका आक्रमण होगा।''

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा–''तू क्या कह रही है ?''

''मैं सच कह रही हूँ, शीघ्रता करो।''

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे–धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

+ + + +

श्रावस्ती का दुर्ग कोसल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। विभिन्न राजवंशों ने उसके प्रांतों पर अधिकार जमा लिया है और अब वह कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोसल के अतीत की स्वर्ण गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग पर रुके। जब उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहिचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ पर से उतरे। उन्होंने कहा–''अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे ?

''सेनापति की जय हो! दो सौ।''

''उन्हें शीघ्र ही एकत्र करो, परन्तु बिना किसी शब्द के सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।''

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत तक सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे सेनापति ने कहा –''जय हो! देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।''

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा–''सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ? –क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिण नाले के समीप की भूमि इसे दे दी है। क्या उसी सम्बंध में तुम कहना चाहते हो ?''

''देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबंध किया। इस स्त्री ने मुझे पथ में यह संदेशा दिया है।''

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा–''मधूलिका! यह सत्य है ?''

''हाँ देव!''

राजा ने सेनापति से कहा –''सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।'' सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा –''सिंहमित्र की कन्या! तुमने एक बार फिर कोसल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा; तुम यहीं ठहरो। पहले उन आतताइयों का प्रबंध कर लूँ।''

+ + + +

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जय–घोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल, वृद्ध–नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा–मंडप दर्शकों से भर गया। बंदी अरुण को देखती ही जनता ने रोष से हुँकार की – ''वध करो!'' राजा ने सहमत होकर कहा –''प्राणदण्ड।'' मधूलिका बुलाई गई। वह पगली–सी आकर खड़ी हो गई। कोसल नरेश ने पूछा –''मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।'' वह चुप रही।

राजा ने कहा –''मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ।'' मधूलिका ने एक बार बंदी अरुण की ओर देखा। उसने कहा –''मुझे कुछ न चाहिए।'' अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा –''नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।''

''तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।'' कहती हुई वह बंदी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

•••

शब्दार्थ

प्राचीर–परकोटा, चहारदीवार / उर्वरा–उपजाऊ / शुण्ड–हाथी की सूँड / स्वस्त्ययन–मांगलिक कार्य / खीलों–बताशे / कौशेय–वसन –रेशमी वस्त्र / अलकों–बाल,केश / शुभ्र–सफेद / श्रमकणों–पसीने की बूँदें / शिथिलता–थकान / कृत्य–कार्य / न्यौछावर – अर्पण / ऊर्जस्वित–ऊर्जावान / निस्पन्द–निश्चेष्ट / दृष्टिपात्–देखना / अनुग्रह–कृपा / रत्न किरीट–रत्नों का मुकुट / निष्ठुर–कठोर / पर्ण–कुटीर–पत्तों से बनी झोपड़ी / जर्जर–जीर्ण–शीर्ण / कपाट–किवाड़ / निस्तब्ध–शांत / गह्वर–गुफा / खड्ग–तलवार / दस्युओं–डाकुओं / दारुण–करुण / श्रमजीवियों–श्रम करके जीने वाले / अमात्य–मंत्री / पद–संचार–चहलकदमी / कोलाहल–जोर–जोर से आवाजें करना / जीर्ण–पुराना, टूटा–फूटा / निकेतन–गृह,घर / विक्षिप्त–सी–पागलों–सी / उल्काधारी–मशाल लिए हुए / प्रतिहारी–सेवक, रक्षक / आतताइयों–आतंकवादियों / आबाल–वृद्ध–बालक और वृद्ध

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मधूलिका का ''मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई।'' क्योंकि–
   (क) वह राजरानी बनने वाली है।
   (ख) कहीं चूक में राजकुमार असफल हो गया तो ?
   (ग) मैंने व्यक्तिगत सुख के लिए कोसल को खतरे में डालकर ठीक नहीं किया।
   (घ) इस रात्रि में कैसा भीषण चक्र होगा! मुझे भी साथ जाना चाहिए था। ( )
2. मधूलिका ने पुरस्कार स्वरूप राजा से क्या माँगा ?
   (क) स्वर्ण मुद्राएँ (ख) खेती की भूमि
   (ग) अरुण के साथ प्राणदण्ड (घ) अपने लिए पृथक दुर्ग ( )

   उत्तरमाला – (1) ग (2) ग

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।'' मधूलिका ने ऐसा क्यों कहा ?
2. ''मैं सच कह रही हूँ शीघ्रता करो'' यह किसने, कब और किससे कहा ?
3. मधूलिका ने कोसल पर क्या उपकार किया ?
4. अरुण कौन था ?
5. मधूलिका ने अपने लिए भूमि कहाँ माँगी ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मधूलिका का परिचय दीजिए।

2. कोसल के उत्सव का परम्परागत नियम क्या था ?
3. 'मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी।' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. मधूलिका ने राजा से अपनी भूमि का मूल्य स्वीकार क्यों नहीं किया ?
5. मधूलिका के पिता कौन थे, उन्होंने क्या कार्य किया था ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. मधूलिका की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
2. निर्वासित अरुण की दुर्ग पर अधिकार करने की क्या योजना थी ?
3. '' जीवन के सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती–बढ़ती रहती है।'' उक्त पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।

•••

यह भी जानें

अनुस्वार (शिरोबिंदु ं)

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (पंचमाक्षर) के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे– पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक, संबंध आदि। (पङ्कज, गङ्गा, च ञ्चल, क ञ्जूस, कण्ठ, ठण्डा, सन्त, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध वाले रूप नहीं।)

(ख) यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे – वाङ्मय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि (वांमय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राह्य नहीं होंगे।)

(ग) पंचम वर्ण यदि द्वित्व रूप में (साथ–साथ) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे – अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंन, संमेलन, संमति रूप ग्राह्य नहीं होंगे।)

(घ) संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे– अहं (अहम्), एवं (एवम्), परं (परम्), शिवं (शिवम्)।

•••